(1936-2009)

ध्यान पत्रिका

संस्थापक : डॉ० शम्भू नाथ

M.Sc., Ph.D.

वर्ष-22 मई-2012 अंक-5

सहज सहज सब कोइ कहै, सहज न चीन्है कोइ।
जिंहि सहजै साहिब मिलै, सहज कहीजै सोइ॥

'सहज' शब्द का प्रयोग सभी लोग करते हैं, किन्तु कोई उसे पहचानता नहीं। जिस साधना से सहज में, स्वभावत:, सरलता से प्रभु से एकाकार हो जाया जाय। उसी को वस्तुत: सहज कहना चाहिए। (संत कबीर)

प्रकाशक

ध्यान सत्संग सभा

हिसार (हरियाणा), मो. : 09416164702, 09416041346

प्रकृति के तीन गुण

(सन्यासी गीता)

परम ज्ञान (उत्तम) तुझे, अर्जुन दूँ समझाय।
जिसे जानकर : योगीजन, रहें मुक्ति को पाय॥
इसी ज्ञान को समझकर, मेरा जान स्वरूप।
मरने का भय दूर हो, सिमिरो परम अनूप॥
जो जो मूर्ति होत हैं, सब योनिन में आय।
मैं ही उसका बीज हूं, मैं ही पिता अरु माय॥
प्रकृति के जो तीन गुण, सत रज तम बतलाय।
अविनाशी है जीवात्मा : देह में दे बन्धाय॥
सतगुण जब वृद्धि करे, छोड़े अपनी देह।
उत्तम निर्मल लोक में : प्राणी पहुंचै एह॥
तीन गुणों को छोड़कर, करे देह का त्याग।
जन्म-मरण सुख-दु:ख छूटे : करे मुक्ति अनुराग॥
त्रिगुणातीत के लक्षण को : अच्छी तरह बतलाओ।
कर्म लेख कैसे कटें : मुझको सब समझाओ॥
सुख दु:ख में व्याकुल न होय, माटी कंचन : एको सोय।
राग द्वेष को दूर भगावे, उदासीन वह : ईश को ध्यावे॥
अच्छे बुरे को सम ही माने, स्तुति व निंदा: एक ही जाने।
शत्रु मित्र: समदृष्टि लावे, त्रिगुणातीत उन्हें ही माने॥

प्रस्तुति : अनु जैन (भिवानी)

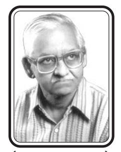

(1936-2009)

दो तरह की थकावटें

(Two Kinds of Tiredness)

✍ डॉ० शम्भू नाथ

प्राणी का जीवन : क्रिया और आराम सम्बन्धित कर्मों से बंधा है।

साधारण मनुष्य के लिए इन कर्मों से मुक्त होना असम्भव है। उच्च स्तर का महात्मा काम सम्बन्धित कर्म से मुक्ति पा सकता है : लेकिन आराम संबंधित कर्मों से मुक्ति पाना असम्भव है। स्वयं कृष्ण ने गीता (3.5) में कहा है कि कोई भी मनुष्य क्षण भर के लिए भी कर्म से मुक्त नहीं : और ऐसा उन्होंने तब कहा था : जब वे मनुष्य के रूप मे थे अर्थात् उस समय स्वयं वे भी कर्म-बन्धन से मुक्त नहीं थे :-

बिन कर्म रह पाता नहीं, कोई पुरुष पल भर कभी।
हो प्रकृति-गुण आधीन, करने कर्म पड़ते हैं सभी॥

जीवात्मा का स्वभाव है : कि वह सदैव सक्रिय रहता है। जीवात्मा की अनुपस्थिति में यह भौतिक शरीर हिल भी नहीं सकता : मृत वाहन के समान है। जीवात्मा सदैव गतिशील (सक्रिय) रहता है और वह एक क्षण के लिए भी नहीं रुक सकता। अत: प्रत्येक व्यक्ति, प्रकृति से अर्जित गुणों के अनुसार विवश होकर : क्षण भर के लिए भी बिना कर्म किए नहीं रह सकता। (3.5)

कर्म दो तरह के हैं : क्रिया सम्बन्धित कर्म और आराम-सम्बन्धित कर्म : इसलिए सम्भावनाएं भी दो हैं :

क्रिया सम्बन्धित कर्म आराम-सम्बन्धित कर्म पर हावी हो जाए
या आराम सम्बन्धित कर्म क्रिया-सम्बन्धित कर्मों पर हावी हो जाए।
सन्त-महात्माओं का रास्ता दूसरे वर्ग के लोगों का रास्ता है : लेकिन इस

कलियुग में दूसरे वर्ग के लोग बहुत मुश्किल से मिलते हैं। अधिकतर लोगों के जीवन में क्रिया आराम पर हावी होती है।

क्रिया के समय : मन , बुद्धि और शरीर में कर्म-प्रभाव समाते हैं : और ये प्रभाव विश्राम के समय प्राणियों के मन, बुद्धि एवं शरीर से निकलते हैं।

इसलिए आज के युग के अधिकतर लोगों के जीवन में नित्य कर्म प्रभाव समाते ज्यादा हैं : और निकलते कम हैं। अर्थात् कुछ-न-कुछ कर्म-प्रभाव शेष रह जाते हैं। ऐसे कर्म-प्रभाव की पर्त आन्तरिक जगत में बढ़ने लगती है।

यह जीवन आत्मसत्ता की देन है : इस आत्मसत्ता को अनन्त की सत्ता भी कहते हैं।

अनन्त: अर्थात् ईश्वर की दुनिया में सीमाओं का कोई काम नहीं है। अर्थ यह निकला : कि हर मनुष्य के शरीर में थकावट की अनन्त पर्तें समाने की सामर्थ्य है। यह सामर्थ्य प्रकृति की देन है। ये समायी हुई पर्तें, हमारे आन्तरिक जगत में जमी हुई थकावट के रूप में रहती हैं : और मात्र ऊपरी सतह की थकावट जमी हुई नहीं होती; अर्थात् उभरी हुई होती है।

हमारे अंदर दो तरह की थकावटें हैं : जमी हुई और उभरी हुई

उदाहरण द्वारा समझते है : जाड़े में दो तरह के घी की सम्भावना रहती है

1. जमी हुई अवस्था (अर्थात् ठोस अवस्था में) और
2. द्रव अवस्था में।

बिल्कुल इसी प्रकार से हमारे अन्दर थकावट भी दो अवस्था में रहती है : जमी हुई अवस्था में तो थकावट की अनन्त पर्तें हो सकती हैं :

लेकिन उभरी हुई थकावट की अनन्त पर्तें नहीं हो सकतीं।

आन्तरिक जगत एक लोक है : और इसे ब्रह्मलोक कहते हैं। अर्थ यह है कि आन्तरिक जगत में भी एक आसमान है और एक जमीन है। भावातीत क्षेत्र (Transcendental Field), आन्तरिक जगत का आसमान है। हमारा मन आन्तरिक जगत की जमीन है : और उपरोक्त जमी हुई थकावटें आन्तरिक जगत के बादल हैं। आन्तरिक जगत का पूरा आसमान एक सूर्य है। यही परमात्मा है, आत्मा है, ब्रह्म या ईश्वर है : और इसी की शक्ति आन्तरिक बादलों से छन कर मन को मिलती है। इस शक्ति के : सत्, चित् और आनन्द तीन गुण हैं।

चित् का अर्थ है : अनुभव शक्ति या होश (Consciousness)। अब समझना बहुत आसान है : कि जिन लोगों के आन्तरिक जगत में थकावट की पर्तें बहुत ज्यादा होंगी : उनके चित् या चेतना की अवस्था भी निम्न होगी। चित् या चेतना की अवस्था जितनी नीची होगी : उतनी आसानी से थोड़ी सी क्रिया के कारण वह आसानी से थक जाएगा। अब समझना बहुत आसान है : कि बच्चों की तुलना में बुड्ढे लोग जल्दी क्यों थक जाते हैं? थकते ही निद्रा की अवस्था आ जाएगी : और इस निद्रा की अवस्था का मुख्य कारण उभरी हुई थकावट की पर्तें हैं।

विश्राम के लिए लेटते ही : ज्यों ही उभरी हुई थकावट को अपने निष्कासन का रास्ता मिलता है : निद्रा आ जाती है।

ज्यों-ज्यों यह उभरी हुई थकावट निकलने लगती है : मनुष्य धीरे-धीरे घोर निद्रा और फिर स्वप्न की अवस्था की ओर अग्रसर होता है। जैसे ही उभरी हुई थकावट पूरी निकल जाती है : वह जागृत अवस्था में आ जाता है। जागृत अवस्था में आने के बाद : मनुष्य को महसूस होता है कि अब वह थका हुआ नहीं है। लेकिन उसकी यह महसूसियत (Assumption) तो उसके निम्न स्तर की चेतना (Low standard of consciousness) की देन है। निम्न चेतना का कारण उसके अन्दर समायी हुई और जमी हुई थकावट है। इसीलिए उसकी आन्तरिक जगत की सारी महसूसियत सत्य से कुछ अलग है : और यही हमारे जीवन-सम्बन्धित माया (गलतफहमी) है और यही जीवन के दु:खों का कारण है।

आज के समाज में, केवल कुछ लोग, (निश्चय ही एक प्रतिशत से भी कम), को ऐसी शिक्षा मिलती है : जिसके आधार पर वे अपने अन्दर की जमी हुई थकावट को उभार सकें।

हमारे सम्पर्क के सारे साधक अच्छी तरह जानते हैं कि इस ध्येय को पूरा करने के लिए : मनुष्य को बैठकर जागृत अवस्था में आराम (Meditation) करने का अभ्यास करना पड़ता है : जिससे हमारे अन्दर की जमी हुई थकावट उभर आये, और फिर लेटने से तेजी से निकल जाय। ऐसा होने पर आन्तरिक जगत के बादल क्षीण होंगे; और मन में धीरे-धीरे ब्रह्मतत्व पिरोयेगा। जिस अनुपात में ब्रह्मतत्व मन में पिरोयेगा : उसी अनुपात में मन में होश या चेतना (consciousness) उभरेगी : और धीरे-धीरे वह आन्तरिक जगत को महसूस (Assume) करने लगेगा।

सारे महात्मा बताते हैं : कि ईश्वर अन्दर है। यहीं आन्तकिर जगत का खजाना हैं। इसीलिए अन्दर झांको : जिससे इस खजाने को पा सको। लेकिन लेखक तो मात्र अन्दर झांकने की कला बता रहा है।

सवाल यह है : कि हम मात्र ध्यान द्वारा रात्रि की निद्रा से मुक्ति क्यों नहीं पा सकते?

अब इसका उत्तर समझना आसान है : हमने देखा कि हमारे अन्दर दो तरह की थकावटें हैं : और निद्रा का सम्बन्ध मात्र सबसे ऊपर की सतह की उभरी हुई थकावट से है। नित्य निद्रा आने का कारण तो केवल यह है :

कि जमी हुई थकावट की तो अनन्त पर्तें दबी होती हैं; लेकिन उभरी हुई थकावट केवल सबसे ऊपर की सतह पर होती है। इस ऊपर की सतह में अनन्त क्रियाओं के प्रभाव समाने की ताकत नहीं होती। थकावट प्रवेश करते ही : जमती भी नहीं। इसीलिये ज्यों ज्यों उभरी हुई थकावट की पर्त बढ़ती है : त्यों-त्यों मनुष्य आराम ढूंढ़ने की अवस्था में आने लगता है। धीरे-धीरे वह कोशिश करके भी काम नहीं कर पाता : और काम करते-करते बिना लेटे भी सो जाता है। एक बार निद्रा की अवस्था में पहुंचते ही : उभरी हुई थकावट की पर्त की ज्यादा से ज्यादा थकावट, जब तक निकल नहीं जाती : मनुष्य अपने आप जागृत अवस्था में नहीं आता। क्रिया आराम पर इतना ज्यादा हावी है कि : आदमी एलार्म लगाकर उठता है या अपने सम्बन्धियों द्वारा अपने को जगाने को कहता है। उभरी हुई थकावट की पर्त की पूरी थकावट नहीं निकल पाती : और जो बच जाती है : वह नई जमी हुई थकावट बन जाती है।

मनुष्य का नित्य सोना कितना आवश्यक है?

बहुधा घर के लोग केवल उतना घी गरम करके पिघलाते हैं या किसी नुकीली चीज से खोदते हैं : जितने की उन्हें आवश्यकता होती है। बाकी घी उसी में छोड़ देते हैं।

इसी उदाहरण के आधार पर जो लोग ध्यान का अभ्यास करते हैं : वे यह भी जानते हैं : कि शुरू-शुरू में एक बार में मुश्किल से 15-20 मिनट का ध्यान हो पाता है। इस थोड़े से समय में : केवल थोड़ी सी जमी हुई थकावट उभर पाती है। यह उभरी हुई थकावट : तुरन्त अपने निष्कासन का रास्ता ढूंढ लेती है। इसीलिए अभ्यास के शुरू में ज्यादातर साधक ध्यान के समय बैठे-बैठे सो जाते हैं। लगभग 20-25 मिनट के बाद वे उठ जाते हैं और शेष जमी थकावट की पर्त, वहीं रहती है। ध्यान से उठने के बाद वे क्रिया के क्षेत्र में आते हैं : और जो थकावट निकली; फिर भर जाती है।

लेकिन एक लाभ होता है : और वह यह कि जो थकावट उभरती है : वह जमी हुई अवस्था में न होकर उभरी हुई अवस्था में रहती है। मात्र इस अन्तर के कारण : ज्यों-ज्यों ध्यान का अभ्यास बढ़ता है, मनुष्य अपनी दूसरी सीटिंग (Sitting) में पहली सीटिंग के बाद की क्रियाओं के समाए हुए प्रभाव (जो कि उभरी हुई थकावट के रूप में रहता है), निकालने में सफल हो जाता है। भले ही दूसरी सीटिंग में वह पहले की जमी हुई थकावट उतनी भी न उभार पाए : जितनी पहली सीटिंग में उभार दी थी।

अब यह समझना आसान है : कि ध्यान थोड़ी देर करते हैं और क्रिया ज्यादा देर करते हैं : फिर भी लाभ क्यों होता है?

कई साल के अभ्यास के बाद साधक एक बार में एक घण्टे बैठने योग्य होते हैं। बहुत से साधकों की यह अनुभूति है : कि सोना तो पड़ता है; लेकिन निद्रा पहले से काफी कम हो गई है। अत: मैं यह कहूंगा: कि ध्यान के अभ्यास के माध्यम से नींद से मुक्ति तो नहीं हो रही है; और शायद होगी भी नहीं। निद्रा का कारण तो वर्तमान क्रियाओं का प्रभाव है। उभरी हुई थकावट का प्रभाव है : पुरानी जमी हुई थकावट का नहीं।

इसलिए जब तक हम वर्तमान क्रियाओं से मुक्ति न ले लें : तब तक मात्र ध्यान के माध्यम से निद्रा से मुक्ति कैसे मिलेगी?

निद्रा के समय जो आराम है; वह मात्र वर्तमान क्रियाओं के प्रभाव के निष्कासन के लिए है; जो हमारे मन की थकावट के सबसे ऊपरी पर्त में उभरी हुई थकावट के रूप में रहती है। लेकिन ध्यान तो हमारी पुरानी जमी हुई थकावटों को उभारने के लिए है। ज्यों-ज्यों जमीं हुई थकावट उभर कर निकल जाती है : त्यों-त्यों मन को अन्दर और गहरायी में अग्रसर होने का रास्ता मिलता है। ज्यों-ज्यों यह रास्ता बढ़ता है; हम कहते हैं : कि अब मन ज्यादा गहराई में जाने योग्य हो गया । दूसरे शब्दों

में वह कम से कम समय में : गहरे से गहरा आराम लेने योग्य हो गया।

भले ही एक बहुत उच्च कोटि का साधक अपनी सारी जमी हुई थकावटों को निकालने में सफल हो जाये : लेकिन यदि उसने गृहस्थ जीवन नहीं छोड़ा है : तो गृहस्थ जीवन की क्रियाएं उसके मन में उभरी हुई थकावट के रूप में अवश्य रहेंगी : और वह सोने के लिए विवश होता ही रहेगा।

अध्यात्म इतिहास बताता है : कि कुछ संन्यासियों ने जब ध्यान का अभ्यास किया; और धीरे-धीरे आन्तरिक जगत की जमी हुई थकावटों को निकालने में सफल हुए : तो अपने संन्यासी जीवन, अर्थात् क्रियाओं के त्याग के कारण : कई महीने समाधि की अवस्था में बैठने लायक हो गए। इसका अर्थ यही निकला : कि कई महीनों के लिए उन्हें निद्रा से मुक्ति मिल गई। इतिहास यह भी बताता है : कि कुछ संन्यासियों ने हजारों वर्षों की समाधि भी लगायी है; लेकिन गृहस्थ जीवन में ऐसा सम्भव नहीं। ❑

जीवन का सहज स्वभाव क्या है ?

✍ **महर्षि महेश योगी**

जीवन का सहज स्वभाव है - नित्य, अनन्त, अखण्ड, सच्चिदानन्द और उस सच्चिदानन्द स्वरूप सागर की तरंग ही ; यह जीवन है।

तरंग जो होती है : उसी पानी की होती है। पानी यदि हरा है : तो तरंग हरी होगी। पानी यदि लाल है : तो तरंग लाल होगी।

तो सच्चिदानन्द सागर की जो तरंग रूप यह सगुण-साकार सृष्टि का परिणाम है : यह भी उसी पानी का बना है। हर एक लहर: हर एक नाम-रूप जगत का जितना भी है- अलग-अलग; जो भी वस्तु दीख रही है : यह उसी सच्चिदानन्द की लहर है। जीवन का एक अथाह, अखण्ड, सच्चिदानन्द सागर और उस सागर की लहरें-यह जीवन का वास्तविक

स्वरूप है।

बस यही जीवन का वास्तविक स्वरूप श्री मद्भगवद् गीता में स्पन्दित होकर : भगवद्गीत होकर बाहर निकला है। निकला इसलिये है : कि जिसको उस स्वभाव का, जीवन के सहज स्वभाव का - सच्चिदानन्द की अखण्डता, अनन्तता का कुछ आभास नहीं है, बोध नहीं है : जो खाली तरंगों की उछाल में उछलता और सदैव परेशान सा रहता है :

डरता रहता है, कब नाव उलट जाय, क्या हो ? तो ऐसे जीवन में पड़े हुए; भ्रमित हुए : जीवों के लिए वह संगीत स्पन्दित हुआ है; कि देखो-जिन लहरों में परेशानी का अनुभव कर रहे हो ; वे लहरें भी उसी सच्चिदानन्द सागर की नित्य सत्ता को ही स्पन्दित करती हैं।

लहर का महत्व है : कि उस स्थिर चिरन्तन शान्त समुद्र को स्पन्दित कर दे। पानी यदि बिल्कुल शान्त है : तो मालूम भी नहीं पड़ेगा कि पानी है या नहीं। सच्चिदानन्द सागर एकदम स्तब्ध भरा हुआ है : तो मालूम भी नहीं पड़ेगा : कि है भी या नहीं। यह तरंगों की खूबी है; जो दिखा देती है : कि यह सागर है।

तो यदि जीव समुद्र की तरंगों में तरंगित होता हुआ; भ्रमित होने लगे और हमेशा अपने जीवन को खतरे में डालकर अपनी सच्चिदानन्दमयिता के अलावे क्षणभंगुरता में आ पड़े: तो उसके लिए यह भगद्गीत स्पन्दित हुआ है, कि फिर उसको वहां पहुंचा दे। यही श्रीमद्भगवद् गीता का लक्ष्य है। ❑

जैसा संग : वैसा रंग

✍ **श्रीमती ऊषा गर्ग** (मो० 08901265520)

ध्यान जीवन जीने की कला है। स्वयं सुख से जीने की; और औरों को सुख से जीने देने की। सब सुख से जीना चाहते हैं और दु:खों से दूर रहना

चाहते हैं। परन्तु जब हम जानते नहीं : सुख क्या है और कैसे प्राप्त किया जाए? लगातार ध्यान के अभ्यास से सुख की खोज करनी नहीं पड़ती; अपने आप सुख से जीने की कला आ जाती है।

पहले के समय में बच्चों को पहले दीक्षा दी जाती थी : यानि कि जीने की दिशा। जिसमें ध्यान, योग, और प्रार्थना आदि, सब पहले सिखाया जाता था। बाद में बुद्धि का ज्ञान दिया जाता था। परन्तु समय के साथ यह उलट गया : पहले बुद्धि का ज्ञान हो गया। दिशा बदल गई : सुख की जगह दु:ख ने ले ली। स्वयं भी आदमी दु:खी होता है और दूसरों को भी दुखी करता है। अगर ध्यान की यही दिशा उसको पहले दे दी जाए: तो सभी जगह सुख ही सुख हो। अपनी बुद्धि के बल पर आदमी बहुत कुछ करता है, पर बाहर के जगत में ही : अर्थात् करनी के क्षेत्र में ही।

अगर भगवान् के क्षेत्र में जाना है : तो मन ही काम करेगा। क्योंकि अन्दर की दुनिया में जाने की स्वतन्त्रता : केवल भगवान ने मन को दे रखी है।

और यह सम्भव केवल ध्यान से है। इसके अभ्यास से ईश्वरीय शक्ति तो उसे मिलेगी ही : और बाहर के क्षेत्र में बहुत उन्नति करेगा। और सुख जो हर आदमी की मांग है : वह भी मिलेगा। संत कबीर अनुसार :

जेती लहर समुद्र की, ते ती मन की दौर।

सहजे हीरा नीपजै, जो मन आवे ठौर॥

समुद्र की जितनी तरंगें हैं, उससे अधिक मन की चंचलताएं हैं। यदि मन अपने आप में शान्त हो जाए, तो सहज ही ज्ञान-हीरे की प्राप्ति हो जाए। (संत कबीर)

हमारा मूल स्त्रोत : जिसके हम अंश हैं : वह हमारे भीतर जीवात्मा के रूप में है।

उससे हमारा सम्बन्ध जुड़ जाये : तो हमें स्थायी सुख मिलेगा। उसी आत्मतत्व से जुड़ने का नाम : ध्यान है। रात को जब हम थककर सोते हैं तो कुछ समय के लिए गहरी नींद की अवस्था आती है। जब हमें कुछ भान नहीं रहता : मैं कौन हूं और कहां हूं? हमारा सबसे सम्बन्ध टूट जाता है; और चेतना का आत्मा से सम्पर्क हो जाता है। प्रमाण यह होता है : कि हमें नई ऊर्जा मिल जाती है। थकावट, परेशानी सब समाप्त हो जाती है : परन्तु यह कुछ समय के लिए। अगर इसी को दिन में तीन बार जागते हुए, आंख बंद करके बैठें: ताकि हमारा ईश्वरीय क्षेत्र में ज्यादा प्रवेश हो, हमें अधिक लाभ मिले और स्थायी सुख मिले। इसी अभ्यास का नाम ध्यान (Meditation) है।

हमारे अन्दर मान-अपमान, अच्छे-बुरे, कई संस्कार जमा हैं। जब आंख बन्द करते हैं : तो संस्कार बाहर निकलते हैं। बस चुपचाप बैठे रहना है : जो हो रहा है, उसको होने देना है। अंदर के विकार निकलेंगे। दृष्टा बनकर देखते रहना है। बस ध्यान रखना : कि नंगी जमीन पर नहीं बैठना। कुर्सी, बेड (Bed), कहीं भी बैठ सकते हैं। जमीन पर कपड़ा बिछा कर। इसी अभ्यास से भगवान् का प्रगट होगा। बस रोज तीन बार। हो सके तो कम ज्यादा भी कर सकते हैं।

लगातार अभ्यास करने से हमारी बुराईयां हमारे प्रयास से नहीं, अपने आप समाप्त होने लगेंगी; जैसे क्रोध, मान-अपमान का डर। क्या अच्छा है? क्या बुरा है? इसकी प्रेरणा मिलती रहेगी। भगवान् गुणों की खान है। जब उनसे दोस्ती होगी : तो वो ही बात हो जायेगी : जैसा संग वैसा रंग। बहुत सरल है। कृप्या पहले पढ़िए, फिर जीवन में अपनाईए : और निहाल हो जाईए। अपना जीवन तो सफल बनाओ; अपने सम्पर्क में आने वालों को प्रेरित करो। यह मत सोचना : कि यह बच्चा है या बूढ़ा है: नहीं कर पाएगा। सब कर सकते हैं। बस आंख बन्द करके : आराम ही करना है। एक बार राम का नाम लेकर। आज से नहीं : अभी से आरम्भ करो।

अध्यात्म : आत्मा या निज स्वरूप की स्थिति
(Self Realization)

✍ डॉ० बलदेव राज नाशा

अध्यात्म का अर्थ है : आत्मा या निज स्वरूप में स्थिति।

पूरी सृष्टि में केवल मन ही आत्मा और ज्ञानेन्द्रियों, दोनों क्षेत्रों में विचरण करने में सक्षम है। आत्मा ब्रह्म के तत्व का भण्डार है।

ज्यों-ज्यों मन आत्मा की शक्ति लेकर बाहर के जगत् में विचरण करने योग्य होता जाता है : त्यों त्यों वह बाहर के जगत में शक्तिशाली होता जाता है। जब वह आत्मा की अधिक से अधिक शक्ति लेकर : बाहर विचरण करने में समर्थ हो जाता है : तब हम कहते हैं कि वह अपने में स्थित रहते हुए; बाह्य जगत में आने योग्य हो गया है। यह मन की सबसे उच्च अवस्था (Highest Condition) कहलाती है। जो शिक्षा मन को धीरे-धीरे इस अवस्था की ओर ले जाए : वही सबसे बड़ी शिक्षा है।

आत्मा का ज्ञान अनुभव करने वाला : हमेशा मन ही होता है, बुद्धि नहीं। ज्ञान का क्षेत्र : विवेक है।

प्रश्न उठता है : कि यह विवेक कैसे जागता है? विषयों के ज्ञान का क्षेत्र हमेशा बुद्धि ही है। अपने नित्य जीवन के अनुभव के आधार पर हम बहुत आसानी से देख सकते हैं ; कि किसी भी विषय के क्षेत्र में बुद्धि के विकास का आधार : उस विषय के क्षेत्र में मन का विचरण ही होता है। अपने इस अनुभव के आधार पर यह समझना बहुत आसान हो जाता है कि:

आत्मा के क्षेत्र में मन का विचरण ही विवेक जागृत करने का आधार होगा।

आत्मा : ब्रह्म के तत्व का भण्डार है। जब मन आत्मा के क्षेत्र में विचरण करके बाहर के जगत में वापस आता है : तो ब्रह्म के कुछ तत्व को इस प्रकार बाहर लाता है, जैसे यदि कपड़ा रंगने के लिए उसे रंग की बाल्टी में डालें और फिर बाहर निकालें तो कपड़ा हमेशा ही कुछ रंग सोखकर बाहर आयेगा। ध्यान के उपरान्त मनुष्य किसी-न-किसी काम में अवश्य ही व्यस्त होगा। कार्य की व्यस्तता के समय ब्रह्म के कुछ तत्व वायुमण्डल में चले जाते हैं और कुछ मन में पिरो जाते हैं। जैसे कि जब कपड़ा सुखाने के लिए फैलाया जाता है : तो कुछ रंग तो वायुमण्डल में उड़ जाता है और कुछ कपड़ा स्वयं सोख लेता है।

जितना ब्रह्म का तत्व मन स्वयं सोख लेता है : उसी मात्रा में मन में ब्रह्म के तत्व के गुण उभरने लगते हैं। ब्रह्म के तीन गुण हैं : सत्, चित्त और आनन्द। ❑

प्रेम : आत्म सत्ता की प्रतिक्रिया

✍ श्री सत्यनारायण शर्मा (09416164702)

ज्यों-ज्यों मोह कम होता है : मन के संस्कारों की बढ़ती हुई क्षीणता के कारण मन अन्दर से बदलता है, और यह बदला हुआ मन अपने बाहर के व्यवहारों के जगत में भी बदलेगा। इसी को हमने प्रेम की परिभाषा में : आन्तरिक जगत की उभरती हुई आत्मसत्ता की बाहरी जगत में प्रतिक्रिया बताया; और यही प्रेम है।

मोह भी मन की एक महसूसियत (Assumption) है, लेकिन मोह का प्रभाव बाहर के जगत में भी प्रतीत होता है। बिल्कुल इसी तरह से उभरती हुई आत्मसत्ता के कारण बदलाव तो मन में है : लेकिन इस बदलाव का प्रभाव व्यावहारिक जीवन में भी प्रतीत होता है। किसी के मन में कुछ भी हो : समाज तो केवल उसके आधार पर चलता है, जो बाहर प्रतीत होता

है। मोह और प्रेम की व्याख्या हमें बताती है : कि बाहर के जगत अर्थात् द्वैत जगत में मोह और प्रेम दोनों अनुभव होते हैं और यह भी अनुभव होता है कि

ज्यों-ज्यों प्रेम बढ़ता है : त्यों-त्यों मोह कम होता है;
और ज्यों-ज्यों मोह बढ़ता है : त्यों-त्यों प्रेम कम होता है।

यदि जीवन ऐसा होगा कि व्यस्तता आराम पर हावी हो जाय : तो मोह अवश्य बढ़ेगा। याद रखने की बात यह है : कि मोह का कारण केवल आत्मसत्ता की कमी है। लेखक कहना चाहता है कि कुछ व्यक्ति कुछ अच्छे कामों में अपनी व्यस्तता बढ़ाकर समाज में सुखी जीवन की उम्मीद करने लगते हैं। वे कुछ अच्छे कामों में अपनी व्यस्तता इनती बढ़ा देते हैं: कि उनके जीवन की व्यस्तता उनके आराम पर हावी हो जाती है, धीरे-धीरे उनके जीवन में आराम हराम होने लगता है। उनकी अज्ञानता केवल यह है : कि वे जीवन को सुख की आशा अच्छे कामों की प्रतिक्रियाओं द्वारा करने लगते हैं जबकि

जीवन का सत्य यह है कि जीवन को सुख देने वाली : अच्छे कामों की प्रतिक्रियाएं नहीं हैं, बल्कि मात्र मन में पिरोयी हुई आत्मसत्ता है। इस आत्मसत्ता की कमी में अच्छे कामों से मोह के कारण : अच्छे कामों में व्यस्तता भी जीवन में दुःख का कारण बन जाएगा, क्योंकि दुःख का कारण तो केवल मोह है।

मोह का कारण बाहर की क्रियाओं की मन पर गहरी प्रतिक्रिया है। प्रतिक्रियाओं की गहराई का कारण केवल संस्कारों का घनापन है। संस्कारों के घनापन का कारण केवल यह है : कि व्यस्तता आराम पर हावी हो गई है।

प्रेम और मोह में अन्तर न समझने के कारण आज का समाज: बिना आन्तरिक जगत के मैल का निष्कासन किए और बौद्धिक स्तर पर बातचीत करके जीवन को समझने और संवारने की कोशिश करता है: जो कि मात्र माया (गलत फहमी) है।

शास्त्र तो यह कहता है कि प्रेम हमेशा यूनिवर्सल (Universal) है।

इसीलिए लेखक ने बताया कि साधना द्वारा बदले हुए मन का व्यवहारिक जीवन में बदलाव ही प्रेम है।

लेखक हमेशा ही बताता रहा है कि ध्यान द्वारा मां-बाप, पति-पत्नी, बच्चे, पूरा कुटुम्ब, मित्र और समाज के सारे व्यक्तियों के बीच में एक समन्वय पैदा होता है।

यह समन्वय ही प्रेम है

प्रेम की उत्पत्ति से साधकों में ज्यों-ज्यों मोह खत्म होगा : त्यों-त्यों सृष्टि की समस्त चेतनाओं में समन्वय पैदा होगा।

समाज में प्रेम उत्पन्न करने में केवल ध्यान की साधना सक्षम है।

ध्यान की साधना की कमी में मोह जीवन के दुःखों का कारण बनेगा। प्रेम यूनिवर्सल (Universal) होता है : लेकिन मोह केवल व्यक्तिगत (Personal) होता है। (अर्थात् सीमाओं के बन्धन में रहता है)। व्यक्तिगत मोह के कारण जब भी कोई दुःख होगा : शिकायत विशेष से ही होगी। लेखक फिर दोहराना चाहेगा : कि शिकायत यूनिवर्सल नहीं होगी। कारण सिर्फ यह है : कि दुःखों का कारण, केवल मोह है।

प्रश्न यह है कि दुःखी कौन है? दुःख का कारण केवल मोह है और जिसके अन्दर मोह है : केवल वही दुःखी है।

यह दुःख तभी मिटेगा : जब वह ध्यान के माध्यम से अपने मन में आत्मसत्ता पिरोने में सफल होगा।

ध्यान से बाहर के जगत की क्रियाएं अन्दर के जगत में गहरी प्रतिक्रिया न डाल सकेंगी। प्रतिक्रियाएं जितनी गहरी होंगी : मन उतना ही ज्यादा दु:खी होगा और प्रतिक्रियाओं को भूलना कठिन होगा। प्रतिक्रियाएं जितनी कम गहरी होंगी : भूलना आसान होगा, और जो भूलने में मदद कर रहा है : **वही प्रेम है।**

मोह और प्रेम हमेशा साथ-साथ रहते हैं :

जैसे उजाला और अंधेरा साथ-साथ रहते हैं।

ज्यों-ज्यों उजाला बढ़ता है : अंधेरा कम होता है। बिल्कुल इसी तरह से मात्र दु:ख का न होना इस बात का प्रमाण है : कि मोह नहीं है।

मोह का न होना इस बात का प्रमाण है : कि प्रेम है।

यह प्रेम मात्र उत्तेजनाओं के कम होने से पैदा हो रहा है। दूसरे शब्दों में यह प्रेम निष्काम कर्मों द्वारा पैदा हो रहा है। सकाम कर्म : चाहे बोलना हो, चाहे लिखना, चाहे खेलना, चाहे कोई दूसरी क्रिया : ये सकाम क्रियायें यदि आराम पर हावी हो जावेंगे : निश्चय ही संस्कार बढ़ायेंगे, मोह बढ़ायेंगे और दु:ख बढ़ायेंगे। तुलसीदास ने रामायण में लिखा है -

कोउ न काहू सुख दु:ख कर दाता।

निज कृत कर्म : भोग सब भ्राता॥

उन्होंने उपरोक्त चौपाई : सही और गलत, अच्छे और खराब कर्मों के सन्दर्भ में नहीं लिखी है। क्योंकि सही और गलत या अच्छे या बुरे कर्मों का मापदण्ड तो बदलते हुए समाज के साथ बदल जाता है।

लेकिन उत्तेजनारहित और उत्तेजना सहित कर्मो की व्याख्या हर युग में एक ही रहती है।

उन्होनें उपरोक्त चौपाई द्वारा समाज को जवीन का एक सत्य बताने की कोशिश की है। निश्चय ही उच्च अवस्था वाला ही : जीवन का सत्य

बता सकता है।

लेकिन यह कहना बिल्कुल गलत होगा : कि उपरोक्त चौपाई हर युग का जीवन-सत्य नहीं है : बल्कि केवल उठे हुए व्यक्ति (Person of High Standard) की अवस्था का वर्णन है। ❑

जीवन के चार स्तर

✍ श्री गंगाधर बसंल (09416041346)

हर काल में हर समाज में 'रस' की एक सामूहिक अवस्था होती है। इसी अवस्था के आधार पर हमारे युग बदलते हैं। सतयुग, त्रेता, द्वापर के बाद : जब कलियुग आता है, तब तक साधारण मनुष्य के जीवन में हर समय प्रयास ही प्रयास दिखाई पड़ता है। क्योंकि 'रस' बहुत कम हो चुका है। एक समय आता है कि प्रयास से भी हमारी इच्छाओं की पूर्ति नहीं होती। अर्थात् मन परेशान रहने लगता है। बुद्धि क्रियाओं को जो भी दिशा देती है : वह हमें मन की इच्छाओं के विपरीत फल देने लगती है। इससे बुद्धि में क्रियाओं को सही दिशा सम्बन्धी खोज की चिन्ताएं बढ़ने लगती हैं। मनुष्य धीरे-धीरे घोर कलियुग (माया जाल अथवा गलत फहमी) की ओर बढ़ने लगता है। जीव की इन समस्त समस्याओं का उपचार तो मात्र 'प्रयासहीन क्षेत्र में मन को ज्यादा से ज्यादा विचरण कराकर'' : अर्थात् निष्काम कर्म (ध्यान) के माध्यम से आन्तरिक रस बढ़ाकर किया जा सकता है।

पुराणानुसार निष्काम कर्म की कला को सकारात्मक रूप देने हेतु जीवन के सौ सालों को चार भागों में बांट रखा था। प्रत्येक भाग पच्चीस वर्ष का था। हमारी प्राचीन शिक्षा प्रणाली ऐसी थी कि हम निष्काम कर्म की भिन्न-भिन्न सिद्धियों को प्राप्त करके जीवन में सब कुछ प्राप्त कर लें। जन्म होते ही बच्चा इतनी 'होनी' की शक्ति लेकर पृथ्वी लोक पर आता

है : कि उसके शरीर में विराजमान जीव का हर काम स्वयं पूरा होता है और उसकी निद्रा सबसे गहरी होती है। हर नवजात शिशु कम से कम समय में गहरे से गहरा आराम लेने में सिद्ध होता है। इन्द्रियजगत की क्रियाओं की व्यस्तता धीरे-धीरे इस अवस्था में कमी लाती है। इस अवस्था में कमी ज्यादा न बढ़े; इसके लिए पिछले युग में वह बचपन में ही अपने गुरुओं के साथ **ब्रह्मचर्य (अर्थात् ब्रह्म में अचारण)** पालन हेतु चला जाता था। इसलिए जिस अवस्था में वह जन्म लेता था : वहां से बहुत ज्यादा पतन होने के पहले ही वह उत्थान की ओर मुड़ जाता था। पच्चीस वर्ष तक अपने गुरुजनों के साथ रहकर 'ध्यान' द्वारा कम से कम समय में गहरे से गहरा आराम लेने में सिद्ध हो जाता था।

निष्काम कर्म (Meditation) की पहली सिद्धी को प्राप्त करने के बाद गृहस्थ जीवन में श्रीमद्भागवद् गीता 2.48 के अनुसार : योगस्थ कुरु कर्माणि; पर चलना शुरू कर देता था। मुख्य बात तो केवल योग में स्थित होकर कर्म करने की है। श्रीकृष्ण ने उपरोक्त माध्यम से जनसाध ारण की क्रियाओं को सफल बनाने का सिद्धान्त सिखाया। पहले कृष्ण बता चुके थे : कि मनुश्य को कर्म करने का अधिकार है ; लेकिन फल पाने का नहीं।

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेष कदाचन'। सत्य यह है कि फल देने का अधिकार केवल ईश्वर को है। ध्यान द्वारा योग में स्थित होकर क्रिया करना : क्रियाओं के क्षेत्र में फल देने वाली शक्तियों को लाना है। ध्यान द्वारा योग में स्थित होकर क्रिया में आने के अभ्यास से : वह इस कर्म कौशल में सिद्ध हो जाता था और यह निष्काम कर्म की दूसरी सिद्धी है; जिसे समाज के लोग सतयुग की शिक्षा के माध्यम से लगभग पचास वर्ष की आयु तक प्राप्त कर लेते थे।

पचास वर्ष की आयु तक गृहस्थ जीवन में क्रियाओं द्वारा फल देने

वाली शक्ति को प्रकट करने में सिद्ध होने के पश्चात् : वह विचारों के क्षेत्र को धीरे-धीरे फल देने वाली शक्ति से तरबतर करने हेतु : कम से कम क्रिया करने का जीवन व्यतीत करने में निपुण रहता था। यही सतयुग का **वानप्रस्थ** जीवन था। निष्काम कर्म की तीसरी सिद्ध अवस्था में लगभग 75 वर्ष की आयु तक सतयुग के सभी प्राणी इस अवस्था को प्राप्त हो जाते थे।

निष्काम कर्मों की तीन सिद्ध अवस्थओं को प्राप्त करने तक मनुष्य जीवन के समस्त इन्द्रिय सुखों के भोग का साधन और शक्ति प्राप्त करने में सक्षम हो जाता था। इसके साथ साथ उसके जीवन में बहुत उच्च स्तर के ब्रह्मसुख के भोग की भी अनुभूति रहती थी। ऐसी अवस्था में इन्द्रिय सुख से दूर होना स्वाभाविक था। अत: जीवन की आवश्यकताएं भी अपने आप कम होने लगती थीं। यही स्वाभाविक **सन्यासी जीवन** था। इस तरह मनुष्य कर्म बन्धनों से मुक्त होने लगता था। आज के समाज में लोग मात्र किसी खास तरह की क्रियाओं को निष्काम कर्म कहते हैं।

उन्हें ऊपर बताये हुए अलग-अलग सिद्ध अवस्थाओं का ज्ञान नहीं है। यह कमी शिक्षा द्वारा हटाई जा सकती है। ❑

परमात्मा अनन्त है

✍ श्री राम सिंह पुनिया, मालापुर,
वाया आदमपुर, जिला हिसार

परमात्मा अनन्त है। इसी कारण उनके अंश अर्थात् बच्चे भी अनन्त हैं। बच्चों को जीव या जीवात्मा कहते हैं। परमात्मा और आत्मा पर्यायवाची शब्द हैं। जीवात्माओं को आत्मस्वरूप होना है। प्रकृति में हर बदलाव के लिए किसी न किसी संगत की आवश्यकता होती है। संग के प्रभाव से प्रकृति में बदलाव आते हैं। जीवात्माएं आत्मस्वरूप होने की ओर अग्रसर

हों : इसके लिए उन्हें आत्मा के संग होना पड़ेगा। सन्त तुलसीदास के अनुसार :

यह विश्व अर्थात ब्रह्माण्ड और पिण्ड दोनों का क्षेत्र : कर्म प्रधान है।

अत: आत्मस्वरूप होने के लिए सूक्ष्म-क्षेत्र में कर्म होना आवश्यक है। हम यह भी अच्छी तरह से जानते हैं कि शरीर के अन्दर सूक्ष्म क्षेत्रों में सब कुछ होता है : किया कुछ भी नहीं जा सकता। अर्थात् शरीर के सूक्ष्म क्षेत्र में मात्र 'होनी' की शक्ति कार्यरत है। होनी में विश्व ज्ञान है। 'होनी' हर समय हो सकती है और किसी भी स्थान पर हो सकती है।

परमात्मा के विषय में भी यही जानते हैं : कि परमात्मा तो हर कण में व्याप्त है। इसलिए सभी साधकों को ईश्वर का दर्शन : 'होनी' में ध्यान के अभ्यास (Meditation) का परामर्श है। ❑

दु:खों का मूल

✍ डॉ० राघवेन्द्र शुक्ल

वस्तुत: दु:खों का बीज सुख में छिपा है। सुख ही दुखों का मूल है। जीवन में सुख की अवस्था न होती तो दु:ख से भी कदाचित कोई व्यक्ति परिचित न होता। सुख केवल क्षणिक आनंद के प्रतीक माने गए हैं। यद्यपि ये आनंद के विषय कदापि नहीं होते : फिर भी आनंद सदृश अनुभूति कराते हैं। सुख न तो आनंद की ओर जाता है : न उसका कारण बनता है।

फिर भी सुख क्या है? यह विचारणीय प्रसंग है। प्रसंग इसलिए है : क्योंकि यह एक प्रश्न बनकर हर क्षण जीवन के उतार-चढ़ाव से जुड़ा रहता है। जिस प्रकार सुख और दु:ख एक साथ विद्यमान होते हैं : वे साथ-साथ चलते दिखाई नहीं देते। सुखी जन सदैव सुख को दु:ख की

पृष्ठभूमि में देखते और समझते हैं। इस पर सभी लोगों को चिंतन करना अनिवार्य है।

सुख का अर्थ है : सांसारिक सुख। प्राय: भौतिक सुख का तात्पर्य नैत्यिक क्षणिक अनुभूतियों से लगाया जाता है और ये अनुभूतियां सुख-दु:ख की तरंगे मात्र हैं। सुख को आनंद नहीं माना जा सकता।

आनंद तो आत्मिक सुख है : जो बाह्य दृश्यों से प्रकट नहीं होता। परमानंद की ओर जाने वाली धर्म और सत्य की पगडंडियां शाश्वत होती हैं : वे सुखानुभूति की तरह क्षणिक नहीं होतीं। आनंद के सागर में कहीं सुख का अस्तित्व नहीं होता। इसलिए आनंद के संवेग से दु:ख की गतिहीनता बिल्कुल स्पष्ट है। सुख के स्थान पर आनंद का सुयोग हितकर है। महायोगियों का मत है : कि सुख वास्तव में आनंद की प्रतिछाया मात्र है। इसे कभी-कभी कृत्रिम आनंद की संज्ञा दी जाती है। महात्माओं का संकेत है : कि सुखांक्षी होना दुर्भाग्य मूलक है। स्त्री सुख, संतान सुख या संपत्ति सुख : न तो शाश्वत आनंद के स्रोत हैं और न जीवन के आत्मतत्वों के। ये जीवन के अर्थों के लिए भले महत्वपूर्ण हों : लेकिन जीवन मूल्यों के लिए आवश्यक नहीं हैं। यदि ये सुख आत्मोद्धार में बाधक हों : तो परमानंद की प्राप्ति संभव नहीं। इनका निर्लिप्त आश्रय ही श्रेयस्कर है ; लेकिन ऐसा करना कठिन कार्य है, क्योंकि प्राय: सभी लोग इन भौतिक सुखों को ही पर्याप्त मानते हैं।

परमानन्द उनकी कल्पना से बहुत दूर बना रहता है। इसीलिए दु:ख बार-बार सताते हैं। दु:खों से मुक्ति के लिए परमानंद की खोज में निकलना चाहिए। परमानंद तो ईश्वर के सामीप्य में है। उपासना (उप + आसन) अर्थात् 'ध्यान योग' में है। संत कबीर अनुसार :

जो हंसा मोती चुगै, काँकर क्यों पतियाय।
काँकर माथा न नवै: मोती मिलै तो खाय॥

ध्यान माला

✍ श्री कुबेर प्रसाद 'गुप्त कबीर'

दोहा-26 : भीतर बाहर क्षेत्र दो, मन के विचरण हेतु।
ब्रह्म जगत के बीच में, मन ही बनता सेतु॥

हर मन के पास अनुभव करने के लिए एक भावों और क्रियाओं; का तथा दूसरा भावातीत (ब्रह्म-जगत) का क्षेत्र है। दोनों क्षेत्रों की अपनी अपनी शक्तियां हैं। सुखी जीवन का आधार यह है कि **मन भावातीत क्षेत्र** (Transcen Dental Field) **की शक्ति को लेकर बाहर के क्षेत्र में क्रियाशील हो** : या यह कहें कि मन में आन्तरिक चेतना और बाह्य जगत की चेतना साथ-साथ (Co-Exist) रह सके। इस अवस्था को पैदा करने में मन ही सक्षम है, इसलिये **मन को इस दोहे में बाहर और भीतर के दोनों क्षेत्रों को जोड़ने वाला पुल (सेतु) कहा गया है।**

दोहा-27 : संस्कार जब भाव बन, ध्यान समय बिलगांय।
ब्रह्म-तत्व मन में घुले, सभी क्षेत्र हरिआय॥

जब हम ध्यान करते हैं : तब हमारे अन्दर समाये हुए प्रभाव (संस्कार) बुद्धि के अनुशासन से मुक्त अनियंत्रित (क्रमहीन और ऊटपटांग के) विचारों के रूप में निकलने लगते हैं। इन निकलते हुए संस्कारों को निकालने वाला : ब्रह्मतत्व होता है। यह ब्रह्म तत्व मन को अनायास प्राप्त हो जाता है। संस्कारों का घनापन कम होते जाने से भी : मन को ब्रह्म-तत्व (आत्मा की शक्ति) अधिकाधिक मिलने लगती है। इस प्रकार ब्रह्म की शक्ति से सम्पन्न मन जब बाह्य-जगत में क्रियाशील होता है : तब जीवन का हर पहलू ब्रह्म की कल्याणकारी योजना के अनुसार संवरने लगता है, जीवन के हर क्षेत्र में सुखप्रद हरियाली छाने लगती है।

नोट :- 1. ध्यान पत्रिका का वार्षिक शुल्क 20/- (बीस) रुपये मनी आर्डर अथवा कैश : अपने Address एवं Contact No. सहित इस पते पर भेजें :-

–Sh. Rakesh Garg, Keshav Lace Emporium,
Shop No. 91, Lajpat Rai (Rehri) Market, Hisar-125001

2. प्रत्येक रविवार को बुधला सन्त मन्दिर नज़दीक बस स्टैण्ड, हिसार में पारिवारिक ध्यान सत्संग शाम को 4 बजे से 6 बजे तक होता है। आप सभी सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

3. ध्यान (Meditation or Self Realization) सम्बन्धी अपने अनुभव, लेख, आलोचना (Comments), अनुभूतियां, प्रश्नोत्तर, शंका-समाधान इत्यादि इस पते पर भेज सकते हैं :-

–सुरेश कुमार गुप्ता
1618, अर्बन एस्टेट-II,
पुष्पा कम्पलैक्स के पीछे, हिसार-125005

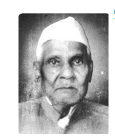

PRINTED MATTER